ओ३म्

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

तिथि–10 जनवरी 2022
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२२
युगाब्द-५१२२, अंक-१४६, वर्ष-१
पौष विक्रमी २०७८ (जनवरी 2022)

मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ –यजु:० ३१। १८

व्याख्यान–[(वेदाहमहेतं पुरुषम्)] सहस्त्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात् पुरिशयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है, उस पुरुष को मैं जानता हूँ। अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें, उसको कभी न भूलें। अन्य किसी को ईश्वर न जानें। वह कैसा है? कि (महान्तम्) बड़ों से भी बड़ा, उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है। (आदित्यवर्णम्) आदित्यादि का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है, तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है, किंच (तमसः परस्तात्) तम जो अन्धकार=अविद्यादि दोष उस से रहित ही है। तथा स्वभक्त, धर्मात्मा सत्यप्रेमी जनों को भी अविद्यादि–दोषरहित सद्यः करनेवाला वही परमात्मा है। विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। (तमेव विदित्वातिमृत्युमेति) उस परमात्मा को जानके ही जीव मृत्यु को उल्लंघन कर सकता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि (नाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय) विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है, ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है। सब मनुष्यों को इसमें ही वर्त्तना चाहिए, और सब पाखण्ड और जंजाल अवश्य छोड़ देना चाहिए ।।८।।

सम्पादकीय

संस्कृत शिक्षा का अवमूल्यन-एक षड्यन्त्र

प्राचीन काल से ही देवभाषा संस्कृत हमारी संस्कृति, सभ्यता, धर्म एवं विज्ञान की मूलाधार रही है, विश्वभर में प्रतिष्ठित वेद, उपनिषद्, उपवेद, वेदांग एवं उपांग (षड्दर्शन) रामायण, महाभारत आदि सभी संस्कृत भाषा में ही समुपलब्ध हैं। मुस्लिम आक्रान्ताओं के आने से पूर्व इस सम्पूर्ण देश की एक ही मान्य भाषा संस्कृत थी, इसी भाषा के माध्यम से राजा, मन्त्री, अमात्य, सेनापति आदि अपनी चक्रवर्ती राज व्यवस्था को समुचित रीति से चलाते थे। जब मुस्लिम आक्रान्ता आए तब यहां अरबी, फारसी, यूनानी एवं कालान्तर में उर्दु प्रचलित हुई। जब अंग्रेज आए तब यह अरबी, फारसी, उर्दु आदि भी गौण हो गयी तथा अंग्रेजी का प्राबल्य बढ़ता चला गया जो कि आज भी तीव्रगति से बढ़ता ही जा रहा है। पुनरापि **येन-केन प्रकारेण** अपने अस्तित्व के लिए जुझते हुए अपनी गौरवशाली परम्पराओं की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व लुटाने वाले दृढ़ लोगों ने संस्कृत भाषा एवं संस्कृत शिक्षा को बचाए रखा। यद्यपि फिरंगियों के तिरस्कार एवं कुछ स्वार्थी प्रवृत्ति के लोगों ने संस्कृत के ज्ञान-विज्ञान को मात्र पोंगापन्थी कर्मकाण्ड तक समेट दिया था। तभी स्वामी विरजानन्द दण्डी जी के शिष्य ऋषि दयानन्द जी ने संस्कृत जगत् को **'तर्क'** नामक **'निरुक्त शास्त्रोक्त'** ऋषि प्रदान किया जिससे सम्पूर्ण देश में सत्य की खोज के लिए **'शास्त्रार्थ'** होने लगे। पुराणी, किरानी एवं कुरानी जो कपोल कल्पनाओं के सागरों में डूबते-उतरते, हिचकोले खाते अपनी-अपनी शेखी बखानते थे, सत्यसमरांगण से पलायन करते हुए अपने-अपने मजहबों के काले गढ्ढ़ों (ब्लैक होल) में जाकर छुप गए। सत्य को सत्य स्वीकार करने वाले बहुत थोड़े ही विवेकी जन हुए।

सन् 1947 ई. में जब देश स्वाधीन हुआ, तब सत्ता ऐसे नेताओं के हाथों में आयी जिन्होंने अपनी परम्पराओं, जीवनमूल्यों सहित अपनी ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न संस्कृत भाषा को कभी यथार्थ दृष्टिकोण से देखा ही नहीं; अपितु अंग्रेजों की गुलामी से आकंठ प्रशिक्षित उन लोगों ने वामपन्थ (कम्युनिष्टों) का चोला ओढ़ा था। परिणाम स्वरूप 'संस्कृत को मृतभाषा' मानकर संस्कृत के कुछ वाक्यों (सूक्तियों) को देश के सभी संस्था-संस्थानों में पूज्य पितरों के चित्रों की भांति सबसे ऊपर टांग दिया। वह भी इतने ऊपर कि न देखना पड़े और न दिखाई ही पड़े। भला इससे बड़ा पाखण्ड और मूढ़ता क्या होगी कि जिस संसद भवन में लोकसभाध्यक्ष के आसन के ऊपर **'धर्मचक्र प्रवर्तनाय'** टंगा है, उसी लोकसभा में शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... प्रत्येक कार्य दिवस पर धर्मनिरपेक्षता की दुहाई दी जाती है। हमारे देश का जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय धर्मनिरपेक्षता की रक्षा के लिए शपथ लिए संस्थापित है, जानते हैं- भले मानुषों ने वहां क्या टांगा हुआ है? वहां टांगा गया है- **''यतो धर्मस्ततो जयः।''**

इन जैसे अनेक यथार्थ, सत्यपरक एवं तथ्यपरक वाक्यों को टांगे अनेक संस्थानों वाले देश में **'संस्कृत शिक्षा'** की दुर्दशा को यदि गम्भीरता पूर्वक कोई यथार्थवादी निःस्वार्थी मानव देखकर विचारने लगे तो न जाने कितनी बार रोएगा ..... ? इसके कुछ उदाहरण आप सभी पाठकगण भी अवश्य देखें- 1. लगभग 1990 ई. तक संस्कृत विषय या संस्कृत माध्यम से पढ़े हुए विद्यार्थी आयुर्वेद भिषक् या आयुर्वेद रत्न आदि डिग्रियां लेकर आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार चिकित्सा कर सकते थे, अंग्रेजी के दासों (अफसरों + नेताओं) ने आयुर्वेद चिकित्सक बनने के लिए जीवविज्ञान (**Biology**) अनिवार्य कर दी, अर्थात् बी.ए.एम.एस. में प्रवेश उसी को मिलेगा जो 10 वीं में एवं 12 वीं में जीव विज्ञान (**Biology**)पढ़ा हो और 10 वीं में जीव विज्ञान के साथ अंग्रेजी अनिवार्य विषय था एवं है। अर्थात् संस्कृत विषय वाला आयुर्वेद चिकित्सा से निष्कासित। दुनियाभर में कोई पूछे कि- आयुर्वेद शास्त्र अर्थात् आयुर्वैदिक चिकित्सा की उत्पत्ति किस भाषा में हुई? उत्तर- संस्कृत में। किन्तु संस्कृत भाषा का सांगोपांग अध्ययन करने वाला आयुर्वेद चिकित्सक नहीं बन सकता। अहो दुर्भाग्य! अहो आश्चर्य! क्या यदि तनिक विवेक पूर्वक विचारा गया होता कि- संस्कृत माध्यम से पढ़े हुए छात्रों को एक या दो वर्ष जीव विज्ञान पढ़ना अनिवार्य होगा। विज्ञान विषय पढ़े हुए छात्रों को दो वर्ष संस्कृत भाषा पढ़ना अनिवार्य होगा। तब भी संस्कृत भाषा एवं आयुर्वेद दोनों की रक्षा होती, अब संस्कृत भी गयी एवं आयुर्वेद चिकित्सा भी लूली-लंगड़ी बना दी गयी।

2. जो संस्कृत को पारम्परिक (ट्रेडिस्नल) विश्व विद्यालयों में पढ़ता है उसके लिए नेट परीक्षा में 73 नम्बर कोड है, अर्थात् प्रश्न पत्र कठिन, तो तैयारी भी अधिक परिश्रम मांगती है। किन्तु जो अन्य विश्वविद्यालयों में संस्कृत एक विषय लेकर मात्र संस्कृत का सामान्य ज्ञान लेते हैं उनके लिए नेट् परीक्षा में 25 नम्बर कोड है अर्थात् सरल प्रश्न पत्र-कम तैयारी। किन्तु जब प्राध्यापक (प्रोफेसर) पद की भर्तियाँ होंगी या अध्यापक पदों की भर्तियाँ होंगी तब प्राथमिकता दी जाएगी गैर परम्परागत छात्र को। परम्परागत अर्थात् संस्कृत विषय जिसने कक्षा 6 से पढ़ा है, शास्त्री (बी.ए.) आचार्य (एम.ए.) उत्तीर्ण है। जबकि गैर पारम्परिक अर्थात् जिसने संस्कृत एक सामान्य विषय के रूप में पढ़कर('बी.ए. संस्कृत, एम.ए. संस्कृत') उत्तीर्ण किया है। और यह भेदभाव सभी नौकरियों के क्षेत्र में सामने आता है। जिनमें से एक क्षेत्र है- सेना में **'धर्मगुरु'** की नौकरी का पहले भी था और अब भी यह एक ज्वलन्त विषय है। जिसका प्रकरण यह है कि सेना में धर्मगुरु (**Religious Teacher**) की भर्ती का विज्ञापन निकला, जिसके लिए पारम्परिक संस्कृत विश्वविद्यालयों के छात्रों ने फार्म भरे, शरीरिक परीक्षा सभी की ली गयी, किन्तु लिखित परीक्षा से पहले पारम्परिक अर्थात् संस्कृत विश्वविद्यालय से डिग्रीधारी अभ्यार्थियों को बाहर कर दिया गया। यह कहकर कि यह डिग्रियां मान्य नहीं है। आश्चर्य! दोनों ही प्रकार के विश्वविद्यालय सरकार के, सभी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) अनुदानित एवं मान्यता प्राप्त। जबकि **'धर्मगुरु'** के कार्य को करने में शास्त्री एवं आचार्य डिग्री धारक ही अन्य बी.ए., एम.ए. वालों से अधिक योग्य, फिर परीक्षा लेने से पहले ही बाहर कर देना कैसे और कौन न्यायोचित ठहरा सकता है? पूर्व में हरियाणा आदि राज्यों के अध्यापक चयन में भी इसी प्रकार का वितण्डावाद हो चुका है। एक ओर वोट पाने के लिए सरकार पारम्परिक संस्कृत विश्वविद्यालय बनाती और बढ़ाती है, दूसरी ओर नौकरी के समय ... ?

इसी को कहते हैं- अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारना।

हम और आप सभी सरकारों को चेताएँ एवं संस्कृत शिक्षा के साथ होने वाले इस भेदभाव को समाप्त करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करें। अन्यथा कोई भी सरकार धर्म, सत्य एवं न्याय को संस्कृत सूक्तियों की ही तरह खूंटियों पर टांगती रहेगी और समाज दिन प्रतिदिन विषैला होता ही रहेगा। आखिर आर्य और देव बनने का आधार भी तो देवभाषा संस्कृत, धर्म, सत्य एवं न्याय ही है। अतः इन्हें बढ़ाना हम सभी का उत्तरदायित्व है।

-आचार्य हनुमत् प्रसाद उपाध्याय, अध्यक्ष, आर्य महासंघ

20 दिसम्बर 2021-17 जनवरी-2022 पौष ऋतु- शिशिर

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा	मघा	पू० फाल्गुनी	उ० फाल्गुनी
कृष्ण प्रतिपदा	कृष्ण द्वितीया	कृष्ण तृतीया	कृष्ण चतुर्थी	कृष्ण पंचमी	कृष्ण षष्ठी	कृष्ण सप्तमी
20 दिसम्बर	21 दिसम्बर	22 दिसम्बर	23 दिसम्बर	24 दिसम्बर	25 दिसम्बर	26 दिसम्बर
हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल
कृष्ण अष्टमी	कृष्ण नवमी	कृष्ण दशमी	कृष्ण एकादशी	कृष्ण द्वादशी	कृष्ण चतुर्दशी	कृष्ण अमावस्या
27 दिसम्बर	28 दिसम्बर	29 दिसम्बर	30 दिसम्बर	31 दिसम्बर	1 जनवरी	2 जनवरी
पूर्वाषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा	श्रवण/धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपदा	उत्तराभाद्रपदा	रेवती
शुक्ल प्रतिपदा	शुक्ल द्वितीया	शुक्ल तृतीया	शुक्ल चतुर्थी	शुक्ल पंचमी	शुक्ल षष्ठी	शुक्ल सप्तमी
3 जनवरी	4 जनवरी	5 जनवरी	6 जनवरी	7 जनवरी	8 जनवरी	9 जनवरी
रेवती	अश्विनी	भरणी	कृतिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा
शुक्ल अष्टमी	शुक्ल नवमी	शुक्ल दशमी	शुक्ल एकादशी	शुक्ल द्वादशी	शुक्ल त्रयोदशी	शुक्ल चतुर्दशी
10 जनवरी	11 जनवरी	12 जनवरी	13 जनवरी	14 जनवरी	15 जनवरी	16 जनवरी
पुनर्वसु शुक्ल पूर्णिमा 17 जनवरी					स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस 23 दिसम्बर	

18 जनवरी-16 फरवरी-2022 माघ ऋतु- शिशिर

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
	पुष्य	आश्लेषा	आश्लेषा	मघा	पू० फाल्गुनी	उ० फाल्गुनी
	कृष्ण प्रतिपदा	कृष्ण द्वितीया	कृष्ण द्वितीया	कृष्ण तृतीया	कृष्ण चतुर्थी	कृष्ण पंचमी
	18 जनवरी	19 जनवरी	20 जनवरी	21 जनवरी	22 जनवरी	23 जनवरी
हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा/अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल	पूर्वाषाढ़ा
कृष्ण षष्ठी	कृष्ण सप्तमी/अष्टमी	कृष्ण नवमी	कृष्ण दशमी	कृष्ण एकादशी	कृष्ण द्वादशी	कृष्ण त्रयोदशी
24 जनवरी	25 जनवरी	26 जनवरी	27 जनवरी	28 जनवरी	29 जनवरी	30 जनवरी
उत्तराषाढ़ा	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपदा	उत्तराभाद्रपदा	रेवती
कृष्ण चतुर्दशी	कृष्ण अमावस्या	शुक्ल प्रतिपदा/द्वितीया	शुक्ल तृतीया	शुक्ल चतुर्थी	शुक्ल पंचमी	शुक्ल षष्ठी
31 जनवरी	1 फरवरी	2 फरवरी	3 फरवरी	4 फरवरी	5 फरवरी	6 फरवरी
अश्विनी	भरणी	कृतिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	आर्द्रा
शुक्ल सप्तमी	शुक्ल अष्टमी	शुक्ल अष्टमी	शुक्ल नवमी	शुक्ल दशमी	शुक्ल एकादशी	शुक्ल द्वादशी
7 फरवरी	8 फरवरी	9 फरवरी	10 फरवरी	11 फरवरी	12 फरवरी	13 फरवरी
पुनर्वसु शुक्ल त्रयोदशी 14 फरवरी	पुष्य शुक्ल चतुर्दशी 15 फरवरी	आश्लेषा शुक्ल पूर्णिमा 16 फरवरी		23 जनवरी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जयन्ती	गणतंत्र दिवस 26 जनवरी	

अपरिग्रह

-आनन्द आर्य, मुजफ्फरनगर

परिग्रह कहते हैं अनावश्यक इकट्ठा करना। अनावश्यक इकट्ठा तो तभी होता है जब मनुष्यों में लोलुपता बढ़ जाती है। ये भी ले लूँ, ये भी इकट्ठा कर लूँ। आवश्यक वस्तु में आवश्यकता के अनुरूप तो सभी इकट्ठा करते हैं और करना भी चाहिए, परन्तु अनावश्यक रूप से लोलुपता एक रोग ही है और रोग तो दुखदायी ही होता है। इसी लोलुपता परिग्रह का उलटा है अपरिग्रह अर्थात् लोलुपता या अनावश्यक वस्तुओं के इकट्ठा करने से बचना। परिग्रह प्रकृति निर्मित वस्तुओं का होता है और प्रकृति की किसी भी वस्तु में स्थायी आनन्द नहीं होता। हाँ क्षणिक अथवा कुछ समय के लिए सुख की अनुभूति तो होती है परन्तु उसके और पाने की इच्छा, उसके लिए किये जाने वाले उद्योग और उसके प्रतिफल, मनुष्य को सुख से रहने नहीं देते हैं। कभी कभी तो पहाड़ खोदने जैसे काम का परिणाम भी शून्य ही रहता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम उद्योगहीन होकर निठल्ले बन जायें। नहीं-नहीं इसका अर्थ यह नहीं है। हम पहाड़ भी खोदें भले ही उसका परिणाम चुहिया निकलने को चरितार्थ करे, परन्तु यह उद्योग-परिश्रम परिग्रह के लिए न हो। समाज के लिए, राष्ट्र के लिए जो भी बड़े से बड़ा कार्य हम करेंगे वह अपरिग्रह ही होगा। एक वैज्ञानिक रात-दिन नई नई खोजों में लगा हुआ केवल अपने परिग्रह के लिए कार्य नहीं करता है, वह तो समाज, संसार के लिए लगा होता है, यद्यपि उसका लाभ उसे भी मिलता परन्तु परिग्रह तो वह होता है जो केवल अपने लिये किया जाता है। एक किसान रात-दिन परिश्रम से अन्न पैदा करता है, वह परिग्रह नहीं है। उसे उस हजारों-सैकडों कुंटल पैदा अन्न में से क्या मिलता है? केवल कुछ आवश्यकतानुसार मात्र ही, शेष तो सभी समाज में प्रयोग होगा।

परिग्रह से हानियाँ ही हानियाँ हैं। प्रथम तो परिग्रह की इच्छा मनुष्य को चैन से नहीं बैठने देती। इच्छाओं का वेग ऐसे पारिग्रही मनुष्यों को तो और भी बेचैन कर देता है। अब इन इच्छाओं को पूरा करने के लिए मनुष्य कड़े से कड़े परिश्रम को करता है परन्तु प्रत्येक परिश्रम अच्छा परिणाम तो नहीं देता है। इच्छानुसार परिणाम न आने पर मन कलान्त हो जाता है जिसका, स्वास्थ्य, चरित्र और सामाजिक व्यवस्था पर दुष्परिणाम होता है। वह रोगी बन सकता है, बेईमान हो सकता है और कभी कभी तो आत्मघाती पग भी उठा लेता है। जिस परिग्रह के लिए इतना उद्योग किया उसका यह परिणाम, जीवन ही निगल गया।

परिग्रही समाज के अन्य लोगों के साथ अपनों से भी अलग थलग सा हो जाता है। घर वाले और अन्य उसे कंजूस कहने लगते हैं। जरा जरा से खर्चे में उसे दु:ख पहुँचने लगता है। अपने परिग्रह के लिए झूठ बोलना साधारण हो जाता है, क्रोधी भी लक्ष्य के अभाव में बन ही जाता है क्योंकि उस असीम लक्ष्य की प्राप्ति तो कभी हो ही नहीं सकती। ये तो सभी अधर्म के लक्षण हैं और पगले अधर्म करते हुए सुख की आशा कर रहा है, अधर्म तो दु:ख का हेतु, सेतु है। देखा देखी यह परिग्रह रोग बढ़ता ही जा रहा है। मेरे अपने जीवन में ही देखने को मिला है कि पहले मनुष्यों में सन्तोष का भाव रहा था जिसके पीछे अपरिग्रह ही होता था। एक मकान किसी के पास है और उसे दूसरे की आवश्यकता नहीं है तो सस्ता मिलने पर भी वह उसके परिग्रह से बचा रहता था। स्वतन्त्रता के बाद तो पता नहीं कहाँ से यह रोग उपज गया और बढ़ता ही जा रहा है।

झूठ, क्रोध, हत्या, आत्महत्या का तो कहना ही क्या। जरा सी बात में झूठ, उस झूठ को छिपाने अथवा उसका सामना करने में क्रोध और क्रोध में हत्या और कुछ न हो तो निराशा में आत्महत्या। क्या इसी लिए परिग्रह कर रहे हैं।

जब मनुष्य बेकार होता है तो इच्छा करता है कि कोई छोटी सी नौकरी भी मिल जाये तो परिवार चले; छोटी सी मिलने पर बड़ी और बड़ी की पंक्ति में लग पड़ता है और सभी दुष्ट संसाधानों का प्रयोग परिग्रही ही तो है।

कुछ लोग वेद का उदाहरण देते हैं कि वेद ने कहा है **'वयं स्याम पतियो रयिणाम'** अर्थात् हम धन ऐश्वर्य के स्वामी होवें। इसका अर्थ परिग्रह नहीं है। हम सत्य मार्ग से धन कमायें परन्तु उसका परिग्रह नहीं करें। वेद यह भी तो कहता है समाज व राष्ट्र के लिये भी सर्वस्व बलिदान कर दें। केवल कमा कर जमा न करें।

हमें जो भी धन, परिवार, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है वह समाज से ही तो होती है। हम अपने आप तो पैदा नहीं हुये। समाज के द्वारा ही पैदा हुये समाज से ही भोजन प्राप्त होता है। स्वयं तो सब भोजन सामग्री पैदा नहीं करते। किसान होने पर भी बहुत सी खाने-पीने की वस्तुयें अन्य साधनों से प्राप्त होती हैं। मकान स्वयं नहीं बनते, समाज के लोगों द्वारा बनाया जाता है। मकान में लगाने वाली ईट, लोहा, सीमेंट, लकड़ी आदि समाज के विभिन्न अंगों से ही प्राप्त होती हैं। इनके अतिरिक्त कल-कारखानों में बनने वाली वस्तुयें, जिनके बिना आज जीवन सुविधापूर्वक नहीं चल सकता, दवाईयाँ, परिवहन आदि सभी समाज के द्वारा ही प्रदत्त हैं। तो क्या हमारा कोई कर्त्तव्य नहीं है कि हम भी समाज को कुछ दें। हम अपरिग्रह अपनाकर समाज के हित में कार्य करते हैं।

अपरिग्रही शांत, पवित्र और विद्या आदि गुणों का धारक होता है। विद्या ही से उसे अपरिग्रह का ज्ञान होता है और इसे अपनाकर वह शांत, पवित्र मन बन जाता है। न कहीं झूठ बोलने की आवश्यकता रहती है और न क्रोध, हत्या अथवा आत्महत्यातक का विचार पैदा होता है। आवश्यकतानुसार वस्तुओं की प्राप्ति में इतना बखेड़ा नहीं करना पड़ता है। वह तो डायन परिग्रह ही मनुष्य को क्या से क्या बना देती है। अपरिग्रह से अधर्म का साथ छूट जाता है और अधर्म हटा तो धर्म आया और धर्म आया तो सुख। इस प्रकार अपरिग्रह सुख पूर्वक धर्म की राह पर रहकर ईश्वर प्राप्ति की और बढ़ जाता है। यही तो मनुष्यमात्र का लक्ष्य है। आज जो हाय लगी हुई है-

ये है ये मेरा है, दुनिया समेट लूँ सब।
जिसको भी देखिये, लगा सब को एक रोग।

पता नहीं यह समझ क्यों नहीं आती।

मेला लगा हुआ है, आते हैं जाते लोग।
कोई मिले किसी को, ये जिन्दगी संयोग।

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-२९

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

संसार में अति द्वेष से पीडित बीमार मानसिकता के इतर कौन अपना व अपने परिवार का भला नहीं चाहता? सभी अपनों के लिए सर्वोत्तम व्यवस्था, व्यवहार व सुख चाहते हैं किन्तु आलस्य प्रमाद अज्ञानता व अनवधानता के कारण अधिकांश अपने ही व्यवहार से परिवार को दु:ख में डालते रहते हैं। वैसे तो कर्तव्य रूपी धर्म की पूर्णत: व्याख्या हम मानवों के द्वारा सम्भव नहीं परन्तु ऋषियों ने अपने अनुभव व दूर दृष्टि से हमें सदैव अलोकित ही किया है। उसी क्रम में हम ऋषि दयानन्द द्वारा उद्धरित मनु महाराज के वचनों पर विचार कर ही रहे हैं जो हम गृहस्थों के सुख के उपायों को संकेतिक करते है यथा-

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता: पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभि:।।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फला: क्रिया:।।
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा।।
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रति पूजिता:।
तानिकृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्तत:।।

अर्थ:- पिता, भ्राता, पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहिन, स्त्री और भौजाई आदि की सदा पूजा करें, अर्थात् यथा योग्य मधुर भाषण, भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से प्रसन्न रखे। क्योंकि जिस कुल में नारियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है, उस कुल में दिव्य गुण, दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं। और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वहां जानो उनकी सब क्रिया निष्फल हैं। क्योंकि-

जिस कुल में स्त्री लोग अपने-अपने पुरुषों के वेश्यागमन वा व्यभिचारादि दोषों से शोकातुर रहती हैं वह कुल शीघ्र नाथ को प्राप्त हो जाता है। और जिस कुल में स्त्रीजन पुरुषों के उत्तमाचरणों से प्रसन्न रहती हैं, वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है। और-

जिस कुल और घरों में अपूजित अर्थात् सत्कार को न प्राप्त होकर स्त्रीलोग जिन गृहस्थों को शाप देती हैं वे कुल तथा गृहस्थ जैसे विष देकर बहुतों को एक बार नाश कर देवें, वैसे चारों ओर से नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

घर की स्त्रियाँ केवल आधी आबादी ही नहीं हैं, शरीर में कोमलता व डील डौल कम होने से उन्हें तुच्छ समझने की प्रवृत्ति, स्वामी होने का घमण्ड और दुष्टों का संग जब पुरुषों को व्याभिचारी बना देता है तब वे स्वयं अपने विनाश की ओर बढ़ रहे हैं ऐसा जानना चाहिए। ईश्वर ने सृष्टि को इस प्रकार से रचा है कि कर्म; करने वाले का पीछा किसी भी प्रकार नहीं छोड़ता है उसे भोगना ही पड़ता है। महाश्य भर्तृहरि ने सत्य ही कहा है- **'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।'** फिर भी इन भोगों में पडकर मनुष्य जिन्हे सर्वाधिक दु:ख देता है वे स्त्रियाँ उसके जीवन को संभालने वाली मित्र हैं, सवांरने वाली अभिभावक हैं, निर्माण करने वाली माँ हैं, शोभित करने वाली लक्ष्मी हैं, रक्षा करने वाली रक्षक हैं प्रेरणा देने वाली प्रेरक हैं ये स्त्री पुरुष परस्पर के जीवन की बाढ हैं। जहाँ बाढ़ नष्ट हो जावे वे खेत जंगली पशुओं और आततायी तास्करों द्वारा उजाड़ ही दिये जाते हैं। विचारने पर पता चलता है कि हमारे भीतर के ये दोष ही सबसे बड़े शत्रु हैं और इन दोषों से परिवार ही परस्पर एक दूसरे को बचाता है इसी लिए निर्देश है-

तस्मादेता: सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनै: ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥

अर्थ:- इस कारण ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले पुरुषों को योग्य है कि इन स्त्रियों को सत्कार के अवसरों और उत्सवों में भूषण वस्त्र खान-पान आदि से सदा पूजा अर्थात् सत्कार युक्त प्रसन्न रक्खें।

स्मरण रहे आभूषण, खानपान वस्त्र आदि उपलक्षण मात्र हैं सत्कार के अवसर और उत्सवों को भी स्त्रियों का प्रसन्न रखने का साधन जानना चाहिए। वैसा ही स्त्रियाँ भी पुरुषों के सम्बन्ध में जाने तो और भी उत्तम है। किन्तु उत्सव, सत्कार के अवसर, वस्त्राभूषण, खानपान आदि का कहना सुखी, सम्मानित व सन्तुष्ट रखने के उद्देश्य से है यही पूजा है सत्कार है। इस सत्कार के न रहने पर हरे भरे कुलों के विनाश होते देखे जाते हैं। पीढ़ियों का बनाना जिम्मेदारी का काम है और उसे नष्ट भ्रष्ट करना मूर्खता का यह पूरी मानवता के साथ द्रोह है कि यदि हम अपनी अगली पीढ़ी को आर्य नहीं बनाते हैं। यह पति पत्नी का साझा कर्तव्य है अत: जब पति सम्मान करे तब-

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥

अर्थ:- स्त्री को योग्य है कि सदा आनन्दित होके चतुरता से गृहकार्यों में वर्तमान रहे। तथा अन्नादि के उत्तम संस्कार, पात्र वस्त्र गृह आदि के संस्कार और घर के भोजनादि में जितना नित्य धनादि लगे, उस व्यय के यथा योग्य करने में सदा प्रसन्न रहे।

पत्नी को चाहिए की वह भी घर के एक विभाग को जहाँ कार्य उसके अनुकूल रहे, प्रसन्नता पूर्वक वहन करे क्योंकि उसकी प्रसन्नता पुरुष का उत्साह बढ़ाकर उसके सकारात्मक सामर्थ्य को बढ़ा देती है। जीवन के प्रति नकारात्मक न रहते हुवे दोनों स्त्री पुरुष एक दूसरे में गुणों का आधान करें क्योंकि-

एताश्चान्याश्च लोकेस्मिन्नपकृष्टप्रसूतय: ।
उत्कर्षं योषित: प्राप्ता: स्वै: स्वैर्भर्तृगुणै: शुभै:।

अर्थ:- स्त्रियाँ यदि दुष्टाचार युक्त भी हों, तथापि इस संसार में बहुत स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के शुभ गुणों से उत्कृष्ट हो गईं, होती हैं और होंगी भी। इसलिए यदि पुरुष श्रेष्ठ हों तो स्त्रियाँ श्रेष्ठ और दुष्ट हो जाती है। इससे प्रथम मनुष्यों को उत्तम होके अपनी स्त्रियों को उत्तम करना चाहिये।

विदेशी आक्रान्ताओं के कारण हुए सांस्कृतिक उथल-पुथल ने आर्य संस्कृति के इस गुण को समाज से बाहर कर दिया। पुरुषों ने मलेच्छों का अनुकरण करते हुए मलेच्छाचरण को अपना लिया क्योकि इससे उन्हें उन्मुक्त आचारण विशेषत: योन अपराध करने की स्वतन्त्रता जो प्राप्त हो रही थी। विदेशी विचारधारा जो स्त्रियों को मात्र जड़ वस्तुवत भोग का साधन ही समझती है। क्योंकि उसमें आत्मा तो है ही नहीं। अत: उनके साथ कैसा भी व्यवहार किया जा सकता है। परिणामत: पुरुषवर्ग व्याभिचार की ओर बढ़ गया। जबकि यही वर्ग स्त्रियों के योन अपराधों के प्रति और भी अधिक कठोर होता गया जिससे सदाचार की पूरी जिम्मेदारी पुरुषों पर न होकर स्त्रियों के पर आ गई। इसी कारण समाज में गृहस्थ सम्बन्ध लचर होते गये और समाज लाचार। जबकि बलवान पुरुष को चाहिए कि वह स्वयं अपने उच्च चरित्र से स्त्रियों को उच्च चरित्र वाली होने के लिए प्रेरित करे और स्त्रियाँ भी चतुरता पूर्वक पुरुषों को सन्मार्ग में बनाए रखें।

क्रमश ....

सहज सरल सांख्य-१८

- आचार्य सतीश, दिल्ली

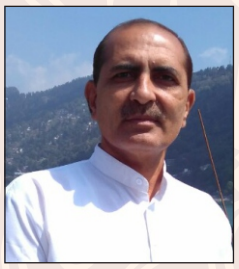

प्रकृति की विचित्रता किससे है?

जगत् विचित्रता में जहाँ प्रकृति का सत्व, रजस्, तमस् रूप प्रधान कारण है वहीं पुरुष द्वारा शुभ-अशुभ और उसके परिणामस्वरूप फल भोगना होता है। अत: इस विचित्रता या वैलक्षण्य में पुरुषों के विविध धर्म आदि को निमित्त मानना आवश्यक है। वैसे भी श्रुति प्रमाण से, अनुमान प्रमाण से और योगियों के अन्त: प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होता है कि धर्म-अधर्म की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

इसमें कोई प्रत्यक्ष प्रमाण तो है नहीं, इसलिए इसकी सिद्धि कैसे मान ली जाए कि पुरुष के कर्म जगत् की विचित्रता में कारण है?

प्रत्यक्ष प्रमाण से ही वस्तु सिद्धि हो ऐसा नियम नहीं, सभी कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण से ही सिद्ध नहीं होता, वस्तु सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी हैं।

तात्पर्य यह है कि कार्यमात्र में दृष्ट-अदृष्ट उभयविध अर्थात् दोनों निमित्तों की अपेक्षा रहती है। कुछ इसका ऐसा अर्थ करते हैं कि जैसे धर्म की सिद्धि में प्रमाण पाए जाते हैं वैसे अधर्म की सिद्धि में भी प्रमाण पाए जाते हैं।

धर्मादिक अन्त:करण के भाव हैं अर्थात् धर्मादिकों का सम्बन्ध अन्त:करण से है। अन्त:करण द्वारा सम्पादित किए जाने वाले सभी क्रिया-कलाप आत्मा के अस्तित्व के बिना सम्भव नहीं हो सकते और वह सब आत्मा के लिए है इसलिए अनुकूल व प्रतिकूल की अनुभूति तो आत्मा को होती है लेकिन त्रिगुणात्मक होने के कारण धर्मादि भावों को अन्त:करण का धर्म माना जाता है।

धर्म-अधर्म अन्त:करण के गुण होने पर भी उनका स्वरूप से नाश नहीं होता बिना विवेक के। उनके संस्कार से उनके फल की अनुभूति सुख-दु:ख के रूप में अनिवार्य रूप से होती है।

अन्त:करण का सीधा सम्बन्ध बाह्य जगत से नहीं है, पांच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा पूरा होता है। अन्त: करण के अवयवभूत पाँच इन्द्रियों के सहयोग से आत्मा को सुखानुभूति करवाते हैं। अनुकूल प्रतिकूल समस्त अनुभूतियों में यही क्रम रहता है।

किन्हीं दो धर्मों का नियत साहचर्य व्यापति का सम्बन्ध कहलाता है। यही अनुमान का मुख्य आधार है। यह साहचर्य केवल एक बार नहीं नियत होना चाहिए। कहीं दोनों धर्मों का ओर कहीं एक का अव्यभिचरित साहचर्य व्यापति का स्वरूप है। जैसे धूम और अग्नि- धूम, अग्नि के बिना नहीं होता लेकिन अग्नि बिना धूम भी अंगारदि में रहती है। यहाँ धूम की अग्नि के साथ व्याप्ति है अग्नि की धूम के साथ नहीं।

यह व्याप्ति कार्यकारण से भिन्न वस्तु नहीं है। व्याप्ति कार्यकारण के सहभाव में नियत है।

तो फिर यह व्याप्ति क्या है?

किसी वस्तु या पदार्थ में यह सहज-स्वाभाविक सामर्थ्य रहता है कि वह किसी का कारण अथवा कार्य हो। यह निज-सहज की अभिव्यक्ति ही उन वस्तुओं का साहचर्य है। जैसे धूम, आग की किसी विशेष शक्ति का रूप है, अग्नि के संयोग के बिना धूम की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

जो कारण होता है वह आधेय है और कार्य की शक्ति उसी के आधार पर है। धूम में अपनी शक्ति सहज नहीं अपितु अग्नि पर आधारित है। ऐसा **आचार्य पञ्चशिख** का मत है।

स्वरूप शक्ति व्याप्ति है। ऐसा नियम नहीं है। व्याप्ति निज शक्ति का उद्भव अर्थात् कार्य-कारण की शक्ति के उद्भव से लक्षित हो सकती है। जब तक कार्यता-कारणता का देश और काल में सहभाव प्रसंग न होवे तब तक भी यह संभव नहीं है। जैसे पत्ती का आधार वृक्ष है और व्याप्ति का लक्षण स्वरूप शक्ति माना जाए तो देखते हैं कि पत्ते टूटकर अलग हो जाएं तो वहाँ वृक्ष का होना सम्भव नहीं। अत: आधेय-आधार का सहभाव या कार्यकारण के सहभाव को स्वीकारने से व्याप्ति लक्षण दोष युक्त नहीं रह जाता।

शब्द और अर्थ का क्या सम्बन्ध है?

शब्द और अर्थ में वाच्य-वाचक भाव है। शब्द अर्थ को कहा करते हैं और अर्थ शब्द से कहा जाता है अर्थात् शब्द वाचक और अर्थ वाच्य है। शब्द कहने वाला और अर्थ जो कहा जाता है।

अर्थ का बोधन कराने के लिए शब्द का उच्चारण किया जाता है।

शब्द अर्थ के सम्बन्ध की सिद्धि तीन तरह से होती है- 1. आप्तोपदेश, 2. वृद्धव्यवहार और 3. प्रसिद्ध पद सहचर।

जो व्यक्ति जिस वस्तु को यथार्थ रूप में जानता है वह उस विषय में आप्त कहा जाता है। उसके उपदेश से हम अर्थ को जानते हैं। जैसे आप्त ने कहा यह 'घट' है।

दूसरा साधन है वृद्ध व्यवहार- एक अनुभवी वृद्ध ने कहा गाय ले आओ। समीप बैठे अबोध ने लाए हुए पशु को देखकर जान लिया- यह गाय है।

तीसरा है प्रसिद्ध पद सानिध्य- अपने द्वारा प्रथम जाना हुआ या निश्चित हुए के सम्पर्क से हम उसके सहयोगी दूसरे अर्थ को समझ लेते है।

वाच्यवाचक का भाव केवल क्रिया बोध के अर्थ से ही हो ऐसा नियम नहीं है। अपितु क्रियार्थ और वस्तु स्वरूप प्रदर्शन या सिद्ध वाक्य हो, दोनों में ही होता है।

इसी प्रकार से जो व्यक्ति लोक में शब्द शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं वे वेदार्थ के ज्ञान में भी सुविधा से प्रवृत हो सकते है।

क्रमश ....

संध्या काल

पौष-मास, शिशिर-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(20 दिसम्बर 2021 से 17 जनवरी 2021)
प्रात: काल: 6 बजकर 15 मिनट से (6.15 A.M.)
सांय काल: 6 बजकर 15 मिनट से (6.15 P.M.)

माघ-मास, शिशिर-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(18 जनवरी 2022 से 16 फरवरी 2022)
प्रात: काल: 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 A.M.)
सांय काल: 6 बजकर 30 मिनट से (6.30 P.M.)

आर्योद्देश्यरत्नमाला

प्रणेता - ऋषि दयानन्द
व्याख्याता - आचार्य परमदेव मीमांसक

६६. अपूजा-जो ज्ञानादि रहित जड़ पदार्थ और जो सत्कार के योग्य नहीं है, उसका जो सत्कार करना है, वह **'अपूजा'** कहाती है।

व्याख्या-जड़ पदार्थ का सत्कार करना और जो सत्कार करने के योग्य नहीं उसका सत्कार करना अपूजा कहलाती है। जैसे-जड़ मूर्ति को भगवान् मानकर धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ाकर सत्कार करना, दुष्टों की सेवा करना **अपूजा** है।

६७. जड़-जो वस्तु ज्ञानादि गुणों से रहित है, उसको **जड़** कहते हैं।

व्याख्या-जिस वस्तु में ज्ञान, इच्छा, द्वेष आदि गुण न हो, वह **जड़** है जैसे-पर्वत, मिट्टी, जल आदि।

६८. चेतन-जो पदार्थ ज्ञानादि गुणों से युक्त है, उसको **'चेतन'** कहते हैं।

व्याख्या-जो पदार्थ ज्ञान, प्रयत्न आदि गुण वाला हो उसे चेतन कहते हैं। चेतन दो पदार्थ हैं-एक ईश्वर, दूसरे असंख्य जीव; ईश्वर में ज्ञान, प्रयत्न, ईक्षण, आनन्द आदि गुण हैं, जीवों में ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा, द्वेष आदि गुण हैं।

६९. भावना-जो जैसी चीज हो उसमें विचार से वैसा ही निश्चय करना कि जिसका विषय भ्रमरहित हो अर्थात् जैसे को तैसा ही समझ लेना, उसको **'भावना'** कहते हैं।

व्याख्या-जो वस्तु जैसी हो विचार कर उस को वैसा ही मानना भावना है, यदि विचार नहीं करते हैं तो भ्रम से वस्तु है कुछ अन्य और हम समझ लेंगे कुछ अन्य जैसे-पत्थर की मूर्ति को ईश्वर मान लेना, पत्थर तो पत्थर है जड़ वस्तु; ईश्वर तो चेतन है और वह भी अनादि, सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञ; यह पत्थर ईश्वर कैसे सम्भव है? यदि विचार करेंगे तो पत्थर जड़ और ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, चेतन सत्तावाला पायेंगे एवं मानेंगे। तब पत्थर को जड़ मानना (चाहे हम ने उसके हाथ, पैर मुख आदि बना दिये हों, प्राण प्रतिष्ठा कर दी हो, जड़ तो जड़ ही है, चेतन के ज्ञान, प्रयत्न आदि लक्षण कदापि उसमें नहीं घटे हैं, न घटते हैं और न ही घट सकेंगे), चेतन तथा निराकार ईश्वर को ईश्वर मानना ही **भावना** है।

७०. अभावना-जो भावना से उल्टी हो अर्थात् जो मिथ्या ज्ञान से अन्य में अन्य निश्चय मान लेना है जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ का निश्चय कर लेते हैं, उसको **'अभावना'** कहते हैं।

व्याख्या-मिथ्या ज्ञान से अथवा बिना चिन्तन किये ही अन्य वस्तु मान लेना अभावना है। जैसे-जड़ को जड़ मानना चाहिये परन्तु इसको चेतन ईश्वर मान लेना अभावना है। उसी तरह सर्वव्यापक ईश्वर को एकदेशी (एक जगह रहने वाला) आदि मानना भी **अभावना** है।

७१. पण्डित-जो सत् असत् को विवेक से जानने वाला, धर्मात्मा, सत्यवादी, सत्यप्रिय, विद्वान् और सब का हितकारी है; उस को **'पण्डित'** कहते हैं।

व्याख्या-जो विद्वान् होकर विवेक बुद्धि से सत्य और असत्य को जानने वाला हो, धार्मिक हो, सत्य बोलने वाला हो, सत्य जिस को प्रिय हो और प्राणिमात्र का हित करने वाला हो; वह **पण्डित** कहलाता है।

७२. मूर्ख-जो अज्ञान, हठ, दुराग्रहादि दोष सहित है, उसको **मूर्ख** कहते हैं।

व्याख्या-जो पढ़ा-लिखा-सुना नहीं वा पढ़-लिखकर भी बिना उचित विचार किये मानने, कहने, करने वाला हो; अपनी गलत बात को भी न छोड़े उसी पर डटा रहे; पहले से कोई मान्यता बना ली हो तो उसके असत्य सिद्ध हो जाने पर भी उसे छोड़े नहीं अपितु उसी का अनुमोदन करता रहे इत्यादि दोषों से युक्त हो तो वह **मूर्ख** है।

७३. ज्येष्ठ कनिष्ठ व्यवहार-जो बड़े और छोटों से यथायोग्य परस्पर मान्य करना है उसको **'ज्येष्ठ कनिष्ठ व्यवहार'** कहते हैं।

व्याख्या-बड़ों का छोटे से, छोटों का बड़े से और अपने से बड़े तथा छोटे के साथ जो योग्यतानुसार आदर आदि करना है; ज्येष्ठ कनिष्ठ व्यवहार कहलाता है। जैसे-बड़े जब आवें तो छोटे उठकर उन से नमस्ते करें, उनको मान्य दें, उनको ऊंचे आसन आदि पर बैठावें, अल्पाहार-भोजन आदि से सत्कार करें, जब वे पूछें तो नम्रतापूर्वक उत्तर देवें, जो कुछ प्रतिज्ञा करें उसे पूरी करें आदि। इसी प्रकार बड़े भी छोटों का मान करें, उपेक्षा न वर्त्तें, नमस्ते करने पर आशीर्वचन अवश्य देवें, उन की बात ध्यान से सुनकर उचित प्रत्युत्तर देवें, जिस से उनका हित हो बिना पूछे ही बतलावें, उन की सहायता एवं रक्षा आदि करें, उन से कभी द्रोह न करें इत्यादि व्यवहार बड़ों एवं छोटों के हैं।।

७४. सर्वहित-जो तन, मन और धन से सब के सुख बढ़ाने में उद्योग करना है, उस को सर्वहित कहते हैं।

व्याख्या-प्राणिमात्र अर्थात् पशु, पक्षी, मनुष्य आदि के सुख के लिये जो ज्ञान से, शरीर से और धन से पुरुषार्थ करना है वह सर्वहित (अर्थात् प्राणिमात्र का जिससे हित सधे) कहलाता है। जैसे-मांसाहार को रोकने के लिये व्याख्यान देना, मांसाहार की प्रवृत्ति को बदलवाना, विधान बनवाना, शरीर से अर्थात् बलपूर्वक भी बूचड़खाना आदि न खुलने देना, जो खुले हैं उन्हें बन्द करवाना, इस निमित्त धन से भी ग्रन्थ आदि का छपवाना, जन संग्रह, जनान्दोलन और गाय आदि पशु, मोर आदि पक्षी एवम् अन्य जन्तुओं की उपयोगिता को बतलाना तथा इन को निमित्त (अहिंसित रूप में) बनाकर उद्योग आदि का प्रणयन जिससे उचित अर्थार्जन हो इनकी रक्षा हो सके, सर्वहित कार्य है। मांसाहार के रुकने से निरीह पशु उनमें परम उपयोगी गाय आदि एवम् अन्य पशु-पक्षियों की रक्षा होकर प्राकृतिक सन्तुलन, समृद्धि, मनुष्य की रक्षा-स्वस्थता एवं मुख्यकर ईश्वर की आज्ञा का पालन और ईश्वर के गुणों का विस्तार होता है। इसी प्रकार से अन्य एकभाषा आदि का प्रसार भी **सर्वहित** कार्य है।।

७५. चोरीत्याग-जो स्वामी की आज्ञा के बिना किसी के पदार्थ का ग्रहण करना है, वह 'चोरी' और उस का छोड़ना **'चोरी त्याग'** कहाता है।

क्रमश ....

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट- **www.aryanirmatrisabha.com** पर उपलब्ध है। अत: आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अत: पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक- **www.aryanirmatrisabha.com/हिन्दी में पत्रिका** पर जाएं।

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

इस सत्र में आकर मुझे बहुत अच्छा लगा। अपने कार्यों को वैदिक संस्कृति के अनुसार, उनका अनुसरण व व्यवहार में ज्ञान की वृद्धि हुई। यहाँ आकर मुझे अपने आप को वेद के अनुसार जो भी धर्म है उसका ठीक-ठीक पालन करने व वेदों को पढ़ने व समझने की अति जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

मैं अपने परिवार को संध्या करने व समाज में यज्ञ, संध्या करने के प्रति जागृति करुँगी। अपने आस-पास आर्या बनाने में सहयोग करुँगी।

नाम : मिथलेश, आयु : ४२ वर्ष, योग्यता : बी.ए., कार्य : शिक्षक, पता : मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश।

मेरा अनुभव यह है कि राष्ट्रीय आर्य सभा में आचार्यो के द्वारा जो भी हमें बताया गया है वह बहुत दुर्लभ व्याख्यान है। यह पूरा व्याख्यान सभी हिन्दुओं को पता होना चाहिए क्योकि इसमें सारी बातें राष्ट्र निर्माण के लिए, राष्ट्र की सभ्यता के लिए, संस्कृति के लिए राष्ट्र की सुरक्षा के लिए है। जो राष्ट्र को सोच रखता है वह कभी भी स्वार्थी नहीं हो सकता, क्योंकि अगर राष्ट्र है तो हम हैं क्योंकि राष्ट्र से बड़ा कोई नहीं। धर्म भी राष्ट्र ही है और देश की उन्नति में हम अपना सम्पूर्ण योगदान दें क्योंकि यहाँ अज्ञान को दूरकर ज्ञान का प्रकाश फैलाया जा रहा है। मनुष्य मात्र का कल्याण करने के लिए यह कार्यक्रम होते रहना चाहिए। 'धर्म की रक्षा और अधर्म का नाश' यह पंक्ति की पूर्ण परिभाषा इसी समय में सिद्ध हुई है जय हिन्द जय भारत।

मैं एक छोटा सा कार्यकर्ता हूँ लेकिन में आचार्य के विचारों से अत्यन्त प्रभावित होकर आचार्यो की तरह ही बनना चाहता हूँ अगर आचार्यों की तरह बनकर में इस देश की खोई हुई पहचान लोटा सकूं और इस देश की अखण्डता, श्रेष्ठता, ऐश्वर्यता के लिए कुछ कर सकूं, तभी में यह जीवन सफल बना सकता हूँ

नाम : प्रमोद कुमार शर्मा, आयु : ३७ वर्ष, योग्यता : आयुर्वेदाचार्य, कार्य : आयुर्वेदाचार्य, पता : नमाना, बूंदी, राजस्थान

मुझे आर्य का दो दिना का सत्र बहुत अच्छा लगा और मुझे सबसे पहले ईश्वर की सही उपासना के बारे में बताया गया और राष्ट्र के कर्तव्य के बारे में बताया गया। और इस समय राष्ट्र को सुधारने की जरुरत महसूस की गयी है। इस देश को बचाने का कार्य आर्य ही कर सकते हैं। अतः हम सभी आर्यों से अनुरोध करते हैं कि 100 करोड़ हिन्दुओं को आर्य बनायें, जल्द से जल्द बनाये।

नाम : ओम प्रकाश मिश्रा, आयु : ५० वर्ष, योग्यता : बी.ए., कार्य : अध्यापन, पता : गोण्डा, उत्तर प्रदेश।

सभा में उपस्थित होने से पूर्व अनेक प्रश्नों के साथ जीवन निर्वाह करते थे। समाज में फैली अनेक कुरीतियों को मानें या न मानें, मानें तो कैसे मानें, किस लिए मानें, इत्यादि प्रश्नों में उलझे हुए थे। लेकिन सत्र में उपस्थित होकर अब लग रहा है कि यह दिशा अब से बहुत पहले होनी चाहिए थी। एक सच्चा राष्ट्र कर्तव्य निभाने वाला बनना, बनाना कितना आवश्यक है तथा कैसे बना जा सकता है? अपने आप की पहचान करना, अपने पूर्वजों की संस्कृति को अपनाकर उस को आगे बढ़ाना हमारा कर्तव्य होना चाहिए।

नाम : सत्येन्द्र कुमार, आयु : ४० वर्ष, योग्यता : बी.ए., डिप्लोमा, कार्य : अस्थाई नौकरी, पता : उठालीना, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

सत्र का अनुभव काफी अच्छा रहा है। जो अज्ञान की परत मस्तिष्क पर जमी हुई थी, वह अब समाप्त हो चुकी है। अब मैं अपने जीवन में हमेशा आर्य बना रहूंगा व उसका प्रचार व प्रसार करता रहूंगा। जहाँ भी जरुरत होगी मैं वहां अपनी सेवा देन की कोशिश करुंगा।

आज से मैं आर्य हुआ तथा हमेशा अपने इस कर्त्तव्य का पालन करुंगा। वेदों को पढूंगा। सत्यार्थ प्रकाश को पढूंगा तथा वदों के अनुसार अपने जीवन को चलाऊंगा।

नाम : पवन आर्य, आयु : ३६ वर्ष, योग्यता : एम.ए., बी.एड., कार्य : अध्यापक, पता : रोहतक, हरियाणा।

मेरा इस सत्र में बहुत अच्छा अनुभव रहा है। इसके माध्यम से मुझे मेरी ऐतिहासिक व सांस्कृतिक विरासत के बारे में पता चला। कुछ विषयों के बारे में पहले कम जानकारी थी जो सत्र लगाने के बाद उनके बारे में कुछ और ज्यादा सिखने को मिला।

इसके माध्यम से मुझे हमारी राष्ट्रीय जानकरी, कर्त्तव्य राष्ट्र के प्रति हमारी जिम्मेदारी के विषय में जानने, राष्ट्र निर्माण के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। मुझे राष्ट्र निर्माण में तन-मन-धन से जो भी जिम्मेदारी दी जाएगी मैं उसे पूरा करने की कोशिश करुंगा।

नाम : बलराम, आयु : ३२ वर्ष, योग्यता : एम.ए., पता : कैथल, हरियाणा।

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	02 जनवरी	दिन-रविवार	मास-पौष	ऋतु-शिशिर	नक्षत्र-मूल
पूर्णिमा	17 जनवरी	दिन-सोमवार	मास-पौष	ऋतु-शिशिर	नक्षत्र-पुनर्वसु
अमावस्या	01 फरवरी	दिन-मंगलवार	मास-माघ	ऋतु-शिशिर	नक्षत्र-श्रवण
पूर्णिमा	16 फरवरी	दिन-बुधवार	मास-माघ	ऋतु-शिशिर	नक्षत्र-आश्लेषा

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।